THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY

OU_178231
UNIVERSAL LIBRARY

बाल-चरित-माला—१०

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

लेखक

पं० शिवप्रसाद पाण्डेय, बी० ए० एल० टी०

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तक-माला

दारागंज-प्रयाग।

१९३२

प्रथम संस्करण २०००]

[मूल्य ।)

प्रकाशक
केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर
छात्रहितकारी पुस्तक-माला
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक—
पंडित विश्वम्भरनाथ भार्गव,
स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

जन्म और वंश परिचय

विद्या सागर का जन्म कुंवार बदी १२ सन् १८२० ई० को दोपहर के समय मेदिनी पुर ज़िले में वीर सिंह गांव के एक कङ्गाल ब्राह्मण के घर में हुआ था। यद्यपि इनका घराना बहुत धनी नहीं था किन्तु उसमें सदाचारी और सच्चरित्र लोगों की कमी नहीं थी। इनके माता पिता भी बड़े ही धर्मात्मा और सदाचारी थे। यह तो प्रायः सभी को मालूम है कि माता, पिता तथा अन्य गुरुजनों के चरित्र का असर बालक पर काफी पड़ता है।

विद्या सागर के चरित्र पर भी उनके गुरुजनों के चरित्र का प्रभाव पड़ा। इनके जन्म के विषय में एक विचित्र घटना लिखी गई है। कहा जाता है जिस समय विद्या सागर अपनी माता के गर्भ में थे उनकी माता पागल हो गई थीं। करोड़ों दवा करने पर भी वे अच्छी न हो सकीं लेकिन ज्योंही विद्या सागर का जन्म हुआ वे स्वयं चंगी हो गईं और उनकी बुद्धि पहिले की सी होगयी। उनको इस दशा में देखकर सब को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। कहा जाता है कि उदयगंज निवासी ज्योतिषी भवानन्द शिरोमणि भट्टाचर्य्य ने इनकी माता की कुंडली देख कर बता दिया था कि उन्हें किसी प्रकार का रोग बाधा नहीं है, उनका शरीर स्वस्थ है। ईश्वर का कृपापात्र कोई महा पुरुष उनके गर्भ में आया है। उसी के तेज से वे इतनी अधीर होगई हैं। इस तेजस्वी बालक के पैदा होते ही उनका शरीर चंगा हो जायगा। जब भट्टाचार्य्य महाशय की बात सच निकली तो सब को यह भी विश्वास हो गया कि यह बालक एक दिन महा पुरुष होगा।

ईश्वर चन्द्र के बाबा, राजमय तर्क भूषण एक बड़े भारी योगी थे। इन्होंने भी तीर्थ यात्रा करने

के समय स्वप्न में देखा था कि उनके वंश में एक तेजस्वी महा पुरुष जन्म लेगा। उन्होंने अपने स्वप्न में यह भी देखा था कि यह बालक जन्म ही से दयावान होगा। जब ईश्वरचन्द्र जी पैदा हुये तो उसी समय इन वृद्ध महाशय ने बच्चे की जीभ के नीचे महावर से कुछ लिखकर कहा था कि यह बालक सयाना होने पर सब को परास्त करेगा और अपने तेज से हलचल पैदा करेगा और इसकी दया देख कर सब लोग मुग्ध होंगे। मैं ही इसका गुरू होता हूँ। आज मेरा स्वप्न सत्य हुआ, मेरा वंश पवित्र होगया।

विद्यासागर का जन्म स्थान वीरगांव तो था पर असल में इनके पूर्व पुरुष इस गांव के रहने वाले नहीं थे। हुगली ज़िले में वनमाली पुर नाम का एक गांव । उसी में ईवश्र चन्द्र के बाबा तर्क भूषण जी रहते थे। कई कारणों से इनको वह गांव छोड़कर अपने ससुराल बीरगांव में आना पड़ा। ईश्वर चन्द्र जी के पिता का नाम ठाकुर दास और माता का नाम भगौती देवी था। ठाकुर दास जी को तो गरीबी के कारण बहुत शिक्षा प्राप्त करने का औसर प्राप्त न हुआ। इनकी गरीबी का पता

और अनुमान इसी बात से चल जाता है कि जब किसी दयालु सज्जन ने जिन के घर में ये रहते थे दो रुपये मासिक की नौकरी दिला दी और जब यह ख़बर उनके घर पहुँची तो उनके घर में बड़ा आनन्द मनाया गया। वास्तव में आजकल के बच्चों को दो रुपये का मूल्य बहुत कम दीखता होगा लेकिन उस समय जबकि बारह आने मन चावल और एक रुपये मन दूध था और साग भाजी खरीदना ही नहीं पड़ता था, तो इस दो रुपये का मूल्य बहुत अधिक था।

विद्यासागर जी के बाबा बड़े ही स्वतंत्र पुरुष थे। ईश्वरचन्द्र ने निडर होने का गुण अपने बाबाजी से पाया था और दया और दूसरों के साथ भलाई करने का गुण अपनी माताजी से। वे अपने ननिहाल की बड़ी प्रशंसा करते थे।

२ बचपन

होनहार बालक बचपन में अक्सर बड़े खिलाड़ी होते हैं। इसका कारण यह है कि वे बड़े तेज़ बुद्धि के होते हैं। जब तक उन्हें किसी अच्छे रास्ते पर नहीं चलाया जाता तब तक वे मनमाना काम किया

करते हैं। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास भी बचपन में बड़े चंचल थे। उसी प्रकार ईश्वरचन्द्र भी बचपन में बड़े ही नटखट थे। वे पड़ोसियों के द्वार पर पाखाना फिर आते थे, सूखते हुये कपड़ों को खराब कर डालते, खेतों से बालियां उखाड़ लाते, और कुछ खाते और कुछ फेंक देते थे। जिसके द्वार पर वे जंगल फिर आते और यदि उस घर की बहुयें गुस्सा होकर ईश्वर को पकड़ लेतीं तो उस घर की बड़ी बूढ़ी स्त्रियां ज्योतिषी जी तथा ब्रजमैजी के स्वप्न का हाल कह कर छुड़ा देती थीं और कहती थीं कि उसे मत मारो वह महापुरुष है।

इनके इतना नटखट होने का एक और भी कारण था। वे अपने माता और दादी के बड़े दुलारे थे और उन पर सब लोग स्नेह करते थे। इनके उत्पात से घरवालों और पड़ोसियों की नाक में दम हो गया था। अन्त में वे गाँव की पाठशाला में पढ़ने के लिये बैठाये गये। उस समय उनकी उम्र केवल पांच वर्ष की थी। उस समय वीरसिंह ग्राम की पाठशाला में पंडित कालीकान्त चटोपाध्याय पढ़ाते थे। वे बालकों को बड़े प्यार से पढ़ाते थे और थोड़े समय में बालक को खूब पढ़ा देते थे।

कालीकान्त जी सब लड़कों से ईश्वरचन्द्र पर अधिक कृपा रखते थे। कारण यह था कि इनकी बुद्धि बड़ी तेज़ थी। जिस पाठ को एक बार पढ़ लेते उसे फिर भूलते नहीं थे। इनकी तेज़ बुद्धि और परिश्रम को देखकर गुरू इनसे वड़ा स्नेह करते और साथही इनका बड़ा आदर करते थे। तीन वर्ष के परिश्रम में ईश्वरचन्द्र ने इस पाठशाला की पढ़ाई पूरी कर दी।

आठ वर्ष की अवस्था होने तक इनकी चंचलता दूर न हुई। यद्यपि ईश्वरचन्द्र बड़े उपद्रवी थे लेकिन पढ़ने में वे बड़ा मन लगाते थे। गुरूजी सब बालकों को बिदा करके ईश्वरचन्द्र को रोक लेते और उन्हें बहुत सी बातें याद करा देते थे। देर होने पर वे स्वयं ईश्वरचन्द्र को गोद में लेकर घर पहुंचा आया करते थे।

एक दिन कालीकान्तजी ने इनके पिता से कहा कि यहां की पाठशाला की पढ़ाई तो इन्होंने पढ़ली अब इन्हें कलकत्ते में ले जाकर अंग्रेज़ी पढ़ाइये। इनकी बुद्धि इतनी तेज़ है कि जो कुछ ये सीखेंगे कभी भूलेंगे नहीं।

इसी समय ईश्वरचन्द्र के बाबा का देहान्त हो गया इसलिये इनके पिता ठाकुरजीदास को जो कलकत्ते में रहते थे घर आना पड़ा। पिता की क्रिया से सुचित होकर ठाकुरदास जब फिर कलकत्ते जाने लगे तब ईश्वरचन्द्र को भी साथ लेते गये। कलकत्ते जाते समय इनके गुरू कालीकान्त भी इनके साथ गये।

जब तीनों मार्ग में जारहे थे तो उस समय पक्की सड़क के किनारे मील गड़े हुये देखकर ईश्वरचन्द्र ने अपने पिता से पूछा, "पिताजी! यह सिलें क्यों गड़ी हैं"! तब उन्होंने उत्तर दिया. "बेटा! ये सिलें नहीं हैं; ये माइल स्टोन हैं। माइल कहते हैं मील को और मील कहते हैं आधे कोस को और स्टोन कहते हैं पत्थर को। ये माइल स्टोन प्रत्येक आध कोस की दूरी पर गाड़े गये हैं। कलकत्ता के बाहर पहिले एक मील मिलता है फिर दूसरा, तीसरा आदि, सबसे ऊपर मील का नम्बर लिखा रहता है। इस मील पर लिखा है उन्नीस मील। इससे यह पता लगा कि कलकत्ता अब बानवे कोस है"। ईश्वरचन्द्र ने पिता से पूछ कर एक और नौ के अंक माइल स्टोन पर लिखे हुये जान लिये।

इस प्रकार जब वे दस नम्बर वाली मील पर पहुंचे तो बोले, "लो पिताजी मैने अंगरेजी के अंक तो सीख लिये"। पिता ने क्रमशः नौ, आठ और सात के अंक पूछे ईश्वरचन्द्र ने सब बता दिया तब पिता को सन्देह हुआ कि सिलसिले में पूछने से तो कदाचित इसने अंक अनुमान से न बता दिये हों क्योंकि नौ के आगे आठ और आठ के आगे सात होता है। इसलिये उन्होंने छ से अंक न दिखाकर पांचवीं मील पर आकर पूछा, "बोलो यह कौनसा अंक है" ? तब ईश्वरचन्द्र ने कहा, "पिताजी! होना तो चाहिये था छः परन्तु भूल से पांच लिखा हुआ है" ! यह सुनकर पिता और गुरूजी को बड़ा आनन्द हुआ ! गुरू ने ठाकुरदासजी से कहा ईश्वर को पढ़ने लिखने का अच्छा इन्तज़ाम करना। यदि यह बालक जीता जागता बना रहेगा तो यह एक बड़ा विद्वान और बुद्धिमान् पुरुष होगा।

कलकत्ते पहुंच कर ठाकुरदासजी भगवतशरण जी के पुत्र जगदुर्लभसिंहजी के यहाँ ठहरे थे। क्योंकि पिता के मरने पर जगदुर्लभ मालिक थे। ये ठाकुरदास को चाचा कहते थे इसी लिये ईश्वर

चन्द्र इनको दादा कहने लगे। दूसरे दिन प्रातःकाल ठाकुरदास प्रातःकाल कोई बिल मिला रहे थे और ईश्वर पास ही बैठे बिल को देख रहे थे अन्त में पिता से बोले "पिताजी यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ"। पिता ने उनको जाँच करने के लिये एक बिल दिया। ईश्वरचन्द्र ने झट जोड़ कर ठीक कर दिया। जगदुर्लभ बाबू यह देखकर ताज्जुब करने लगे और ठाकुरदास से पूछा क्या इन्हें अंग्रेज़ी पढ़ाई गई है? पिता ने मार्ग में माइल स्टोन से अंक सीखने की सारी घटना कह सुनाई तब वे बहुत प्रसन्न हुये।

ठाकुरदास जी ईश्वर को हिन्दू कालेज में भर्ती करना चाहते थे क्योंकि धन की कमी के कारण वे स्वयं कुछ पढ़ न सके लेकिन वे अपने पुत्र को एक अच्छा विद्वान बनाना चाहते थे चाहे उनको कोई भी दुःख उठाना पड़े। उन्होंने ईश्वर को मुहल्ले की एक पाठशाला में बिठा दिया। जगदुर्लभ बाबू के परिवार का व्यौहार भी ईश्वरचन्द्र के प्रति इतना भला था कि ये अपने घर के लाड़ प्यार को क़रीब क़रीब भूल ही गये। ईश्वरचन्द्र ने स्वयं लिखा है "छोटी दीदी राई मणि मुझे अपने पुत्र

गोपालचन्द्र घोष से कम स्नेह नहीं करती थीं" स्त्री जाति पर जितनी श्रद्धा ईश्वरचन्द्र में थी उस सबका कारण उनके हृदय पर राई मणि के सद्विचार का प्रभाव था। विद्यासागर के हृदय पर राईमणि के मातृ स्नेह का ऐसा प्रभाव पड़ा था कि वे सर्वदा के लिये स्त्री जाति के मित्र बन गये। उन्होंने बङ्गाल में जितने कार्य्य स्त्री सुधार के लिये किये अथवा जितना स्त्री शिक्षा में अपना धन और समय लगाया उतना और किसी कार्य्य में नहीं खर्च किया।

विद्यासागर ने केवल तीन ही महीने में इस पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर दिया। इसी अवसर में इनके खूनी ववासीर उभड़ आई। इसलिये वे बहुत बीमार हो गये। क्योंकि दवा बराबर होती रही पर रोग बढ़ता ही गया। इनकी दादी को जब यह खबर लगी तो वे कलकत्ते आईं और इन्हें घर ले गईं। घर जाते ही अपने साथियों के साथ खेलने कूदने लगे और शीघ्र चंगे हो गये।

दूसरी बार ठाकुरदास ईश्वरचन्द्र को फिर कलकत्ते ले गये। इस बार ईश्वरचन्द्र के कहने से

ही वे अपने साथ नौकर नहीं ले गये। मार्ग में ईश्वरचन्द्र एक जगह थक गये और आगे न जा सके। उनके पिता ने उन्हें बहुत धमकाया पर ईश्वरचन्द्र इतने ज़िद्दी थे कि वे धमकाने से कभी नहीं मानते थे। मजबूर होकर पिता को उन्हें गोद में उठाकर चलना पड़ा और बड़ी मुश्किल से रास्ता तय कर पाया। किसी तरह वे नाव करके बैद्यबाटी से कलकत्ते पहुँचे।

कलकत्ते पहुँच कर ठाकुरदासजी अपने पुत्र के पढ़ाने की व्यवस्था सोचने लगे। बहुतेरे लोगों ने उन्हें सलाह दी कि ईश्वर को अंग्रेज़ी पढ़ाओ पर ठाकुरदासजी ने उन्हें संस्कृत पढ़ाना ही उचित समझा। उस समय ईश्वरचन्द्र को माता के मामा राधामोहन के चचेरे भाई मधुसुदन वाचस्पतिजी कलकत्ते के संस्कृत कालेज में पढ़ रहे थे उन्हीं के उत्साह और सलाह देने से ठाकुरदास ने ईश्वरचन्द्र को संस्कृत कालेज में भर्ती करा दिया।

३ विद्यालय की पढ़ाई

ईश्वर चन्द्र सन् १८२९ में संस्कृत कालेज में व्याकरण की तृतीय (तीसरी) श्रेणी में भर्ती

हुये। उसमें गंगाधर तर्क बागीश पढ़ाते थे। वे ईश्वर चन्द्र की मिहनत, तेज़ बुद्धि और स्मरण शक्ति को देख कर बड़े ही प्रसन्न हुये और सदा इनपर बिशेष कृपा दृष्टि रखने लगे। कालेज में भर्ती होने के छः महीने के बाद जो परीक्षा हुई उसमें पास होकर इनको ५) मासिक का वज़ीफा मिलने लगा। इनके पिता प्रति दिन इन्हे कालेज में पहुंचा जाते और शामको स्वयं कालेज से लिवा भी लाते थे। इसी कारण ईश्वरचन्द्र बुरी संगति में नहीं पड़े। बहुत से लड़के आज कल केवल बुरी ही संगति में पड़कर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं जिसके लिये उन्हे फिर जन्म भर पछताना पड़ता है इस लिये बालकों को बुरी संगति से सांप की तरह डरना चहिये। पिता ठाकुर दास जी को भी धन्य है। आज कल ऐसे ही पिताओं की आवश्यता है।

जब ईश्वर चन्द्र कुछ समझदार होगये तब इनके पिता ने इन्हे अकेले जाने की अनुमति देदी। ईश्वर चन्द्र जी का यह नियम था कि पाठशाला से आकर सर्वप्रथम वे अपने पढ़े हुये पाठको दुहरा जाते थे, इनके पिता बड़े ध्यान से सुनते थे और यदि कोई भूल हो जाती थी तो

उन्हें दण्ड भी देते थे। संध्या समय जब ठाकुर दास जी नौकरी मे आते और ईश्वरचन्द्र को सोते पाते तो उन्हे खूब पीटते थे। पिता के डरके मारे ईश्वरचन्द्र जी कभी कभी अपने आंखो में सरसों का तेल भी लगा लेते थे ताकि सुस्ती न आवे। रात को ठाकुर दास जी स्वयम भी उठ जाते और ईश्वर को बहुत सी बाते बताते और श्लोक कण्ठ कराते थे। उन्हो ने इनको ३०० श्लोक यों ही कण्ठ करा दिये थे। दो साल तक तो ईश्वर चन्द्र अपनी कक्षा में प्रथम आये पर तीसरी साल बहुत मिहनत करने पर भी प्रथम न आये और इनका दिल टूट गया। उन्हों ने कालेज छोड़ कर घर जाने का निश्चय कर लिया। ये तो बड़े ज़िद्दी और अपने हठ को जल्दी नही छोंड़ते थे पर मधुसूदन जी के कहने से और अपने गुरू तर्क वागीसजी के समझाने से उन्होंने अपनी बिचार बदल दिये। बिद्यासागर अपनी श्रेणी में सदा प्रथम ही होना चाहते थे यदि कोई बिद्यार्थी तेज होता था तो ये उससे दूनी मिहनत करके नम्बर बढ़ा ले जाते थे। ये अपने परिश्रम के बल से कभी किसी के अनुग्रह के भिखारी नहीं रहे। स्वावलम्बन ही के कारण वे

सब जगह बिजय पाते थे। उन्हों ने कभी किसी की टेढ़ी आँख नही देखी।

ईश्वर चन्द्र जी सच मुच ही दुनियां के बिरलेही पुरुषों में से एक थे। परिवार के कष्ट को सहते हुये अपनी पेट की ज्वाला का सामना करते हुये दुनिया में कौन ऐसा पुरुष है जिसने अपनी प्रतिभा का परिचय वैसे ही दिया हो जैसा विद्या सागर जी ने दिया। पिता ग़रीब थे। आप को भी पेट भर अन्न नहीं मिलता था तिस पर भी विद्यालय से जो वजीफ़ा मिलता था उसका एक अधिक हिस्सा अन्य ग़रीब सहपाठियों की सहायता में वे खर्च करते थे। आप अपने घर के कते हुये सूत के कपड़े पहनते थे परन्तु अन्य ग़रीब बालकों को अपने से अच्छा वस्त्र ख़रीद देते थे। लड़कों का तो कहना ही क्या है बड़ों बड़ों में भी यह त्याग देखने में कम आता है। विद्यासागर दूसरों के लिये सदा अपने कष्टों को भूल जाते थे।

एक ओर पेटभर भोजन न मिलने और और काफ़ी निद्रा न मिलने का कष्ट था दूसरी ओर घर पर अपने तथा अपने पिता के लिये रोटी बनाना इस पर भी अन्य गरीब बालकों

की खबर रखते हुये अपनी श्रेणी में प्रथम आना कितने कठिन परिश्रम का काम है। विद्यार्थियों को ईश्वर चन्द्र से बढ़कर इतने कष्टों का सामना करते हुये अपने अध्ययन में सफल होने की दूसरी मिसाल संसार भर में न मिलेगी। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि मैं किसी से सहायता लिये बिना ही विद्यालय का सर्व श्रेष्ठ विद्यार्थी बनूंगा।

रात २ भर पढ़ने से और अनेक प्रकार के काम करने से उनका शरीर दुबला होगया था। वे अक्सर बीमार हो जाया करते थे लेकिन तौभी अपने परिश्रम को नहीं छोड़ते थे। परिश्रम करने का उन्हें एक स्वभाव सा पड़ गया था। कहते हैं जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उसके एक दिन पहले भी अपने जरूरी कामों को स्वयं करने की उन्होंने चेष्टा की थी।

जिस समय ईश्वरचन्द्र व्याकारण श्रेणी को छोड़ कर साहित्य श्रेणी में आये उनकी अवस्था सिर्फ ११ वर्ष की थी। साहित्य श्रेणी के अध्यापक ने इनको अपनी श्रेणी में लेने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा बालक की अवस्था छोटी

है वह साहित्य ग्रंथों को न समझ सकेगा। ईश्वर बड़े आत्माभिमानी थे वे अध्यापक की यह बात सुनकर बोले "आप मुझे साहित्य में परीक्षा ही लेकर भरती कर लें नहीं तो मुझे कालेज छोड़ना पड़ेगा"। यह सुनकर अध्यापक ने इनसे काव्य के कई एक श्लोकों की व्याख्या करने के लिये कहा। ईश्वर चन्द्र ने उन श्लोकों का अन्वय लगाकर इतनी अच्छी व्याख्या की कि अध्यापक जी आश्चर्य्य में आगये। तुरन्त ही इनको भर्ती कर लिया।

ईश्वरचन्द्र ने साहित्य श्रेणी में पहले वर्ष कुमार सम्भव, रघुवंश आदि ग्रंथों की परीक्षा दी जिसमें इनका प्रथम नम्बर आया इसके लिये उन्हें अच्छा इनाम मिला। दूसरी साल की परीक्षा में भी उनके अव्वल नम्बर आये। विद्यार्थी और अध्यापक सभी इनकी तीव्रता पर दंग रहते थे। स्मरण शक्ति इतनी प्रबल थी कि बचपन से लेकर सारे जीवन की अधिकांश घटनायें उनको याद थीं। जब ये छोटे थे इनके पिता ने इनसे सन्ध्या के मंत्र पूछे, इन्हें याद नहीं थे, इनके पिता ने कहा जब तक तुम संध्या के मंत्र न याद कर लोगे तब तक तुम्हे भोजन न दूंगा जिन मंत्रों को साधारण बालक

हफ्तों में भी नहीं याद कर सकते थे उन्हें उन्होंने रसोई होने के पहले ही सुना दिया।

१४ वर्ष की अवस्था में ईश्वरचन्द्र जी का विवाह शत्रुघ्न भट्टाचार्य्य जी की गुणवती सुन्दरी कन्या दानमयी के साथ हो गया। दानमयी की अवस्था अभी केवल आठ ही वर्ष की थी।

ईश्वरचन्द्र जी १८ वर्ष की अवस्था में साहित्य पाठ समाप्त कर अलङ्कार श्रेणी में पहुंचे। एक ही साल में साहित्य दर्पण, काव्य प्रकाश, रस गङ्गाधर आदि कठिन साहित्य ग्रंथों की परीक्षा में प्रथम नम्बर आये परन्तु अति परिश्रम से बीमार होगये खूनी बवासीर उभड़ आई और वीर सिंह को चले आये। वहां एक ब्राह्मण ने कुछ दवा खिला कर शीघ्र अच्छा कर दिया। ईश्वर चन्द्र घर पर जाकर छोटे लड़कों के साथ छोटे २ खेल खेलते थे, समान अवस्था वालों के साथ कुश्ती और लकड़ी के खेल खेलते थे और अपने बड़ों के साथ नम्र व्यवहार करते थे।

ईश्वर चन्द्र जी अपने माता पिता के पूरे भक्त थे, वे उनको साक्षात देवता मानते थे वे कहा करते थे कि "मूर्त्ति पूजा तो फ़ज़ूल ही है यदि पूजा

करनी है तो माता पिता की करनी चाहिये। क्योंकि उन्होंने ही हमारे लिये बड़ा कष्ट उठाया है"।

ईश्वर चन्द्र ने कालेज के प्रिंसिपल से मिल कर स्मृति शास्त्र पढ़ने की आज्ञा ले ली। मनुसंहिता, मिताक्षरा, बाग भट्ट आदि तीन वर्ष की कठिन पढ़ाई से ये कठिन ग्रंथ इन्होंने केवल छः मास में अपने कठिन परिश्रम से पढ़ डाले और लौ कमेटी की परीक्षा में विशेष प्रशंसा के साथ पास हुये। इस समय इनकी रेखें भीग रही थीं। इतनी कम अवस्था में स्मृति शास्त्र की परीक्षा में पास करने से लोगों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। ईश्वरचन्द्र द्वारा लौ कमेटी की परीक्षा पास करने के थोड़े ही दिनों बाद त्रिपुरा राज्य के जज पण्डित का पद खाली हुआ। सत्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने इस पद के पाने की अर्जी दी। अर्जी मंजूर हो गई पर पिता की राय इन्हें नौकरी कराने की न थी।

कई परीक्षाओं को पास करके ये १९ वर्ष की अवस्था में वेदान्त की श्रेणी में आये। इनकी बुद्धि को देखकर इनके अध्यापक चकरा जाते थे और जहां सन्देह होता इनसे बहस करके अपने सन्देह की गांठ खोल देते थे।

वेदान्त श्रेणी के एक अध्यापक पं० शंभूचन्द्र जी वाचस्पति विद्या और वय में अधिक होने पर इनके साथ मित्रवत् वर्ताव करते थे। हर विषय में इनकी सलाह लिया करते थे। वाचस्पति महाशय की अवस्था अधिक हो गई थी इसलिये उन्हें स्नान करने और खाने पीने में भी दूसरे की सहायता लेनी पड़ती थी। स्नेह-वश ईश्वरचन्द्र ही उनकी सेवा करते थे। एक दिन वाचस्पति महाशय ने ईश्वरचन्द्र से अकेले में कहा, "बेटा, संसार में मेरे और कोई नहीं है, मुझे अपने शरीर की रक्षा में बड़ा कष्ट होता है। इसलिये कई बड़े आदमी मुझे विवाह करने की सलाह दे रहे हैं। कन्या भी निश्चित हो गई है। वह बड़ी गुणवती और सयानी है। इसमें तुम्हारी क्या राय है?" ईश्वर ने इसका घोर विरोध किया पर वास्पति महाशय पर तो विवाह का भूत सवार था और उन्होंने विवाह कर ही डाला। अतः ईश्वरचन्द्र की श्रद्धा उनकी ओर से जाती रही।

संभव है इसी घटना से दुखी होकर ईश्वर-चन्द्र ने आगे चलकर विधवा-विवाह पर ज़ोर दिया हो।

एक और भी ऐसी ही घटना हुई जिससे इनका दिल विधवा-विवाह की ओर झुक गया। इनके किसी निकट सम्बन्धी की कन्या विधवा हो गई और विधवा ही अवस्था में उसे गर्भ रह गया। उसके गिराने का हज़ार प्रबंध किया गया पर वह न गिरा। अंत में जब बालक पैदा ही हो गया तो लोकलज्जा के भय से वह सौर ही में मार डाला गया इसका भी असर ईश्वर के दिल पर बड़ा गहरा पड़ा। संसार की एक ही दो घटनाओं से तो महापुरुषों का चित्त बदलता ही है।

अपनी बहिन तथा चाचा की मृत्यु ही तो थी जिसने स्वामी दयानन्द जी को जीवन और मृत्यु के प्रश्न को हल करने के लिये उत्साहित किया।

बूढ़े रोगी और मुर्दे का दर्शन ही तो था जिसने गौत्तम की राज्य-पाट छोड़ वैराग्य धारण कराया।

४—कार्य्य का मैदान

फोर्ट विलियम कालेज के प्रधान पंडित के मर जाने पर वहां के प्रिंसिपल मार्शल साहेब ने ईश्वर चन्द्र विद्या सागर को उनकी जगह पर नियुक्त किया। इनको ५०) रुपये मासिक मिलते थे। विद्या

सागर ने बड़ी ही योग्यता से अपने कार्य्य को करना प्रारंभ किया। नौकर होते ही उन्होंने अपने पिता की नौकरी छोड़ा दी और उन्हें घर चले जाने की प्रार्थना की। इसलिये वे अब घर ही पर रहने लगे। विद्या सागर इतने मेहनती थे कि वे केवल अपने ही कार्य्य करके नहीं रह जाते थे पर मार्शल साहब को भी उनके कार्य्यों में मदद देते थे।

नौकरी करते समय भी विद्या सागर जी बड़े निर्भय और सत्यवादी बने रहे। विलायत से जो अंग्रेज सिविलियन आते थे उन्हें हिन्दी की परीक्षा देनी पड़ती थी। अयोग्य साबित होने पर उन्हें सीधे घर लौट जाना पड़ता था। इनके परीक्षक बहुधा विद्या सागर ही हुआ करते थे। एक बार प्रिंसिपल साहेब ने इनसे कहा कि विलायत से आये हुये अंग्रेज़ों के साथ आप कुछ रियायत करें। विद्या सागर ने साफ़ उत्तर दे दिया "मैं अन्याय नहीं कर सकता चाहे नौकरी छूट जाय" यह सुनकर मार्शल साहेब चुप हो गये और वे विद्यासागर के न्याय की प्रशंसा करने लगे।

जिस समय वे फोर्ट विलियम कालेज में प्रधान पंडित थे उन्हीं दिनों एक दिन उस समय के गवर्नर

लार्ड हार्डिङ्ग कालेज देखने आये। कुछ देर तक उनसे और विद्यासागर जी से बातचीत होती रही। उसी में विद्या सागर ने गवर्नर से कहा "संस्कृत कालेज से पास हुये विद्यार्थियों की ओर सरकार का ध्यान नहीं है" अतः इन्हीं के कहने से गवर्नर जनरल साहेब ने सारे बंगाल में एक सौ एक बंगला भाषा के स्कूल जारी कर दिये। उन स्कूलों में संस्कृत कालेज के विद्यार्थी शिक्षक का स्थान पाने लगे। शिक्षक नियुक्त करना और परीक्षा लेने का भार मार्शल साहेब और विद्या सागर ही को सौंपा गया। अनेक कठिनाइयों के पड़ने पर भी ईश्वरचन्द्र जी ने इस कार्य्य को बड़ी सत्यता से चलाया।

ईश्वरचन्द्र जी में लालच छू तक भी नहीं गया था। एक बार संस्कृत कालेज में व्याकरण के प्रथम और दूसरे श्रेणी के पद खाली हुये। प्रथम श्रेणी के अध्यापक का वेतन ९०) रु० मासिक था। उस समय कमेटी के मालिक और मार्शल साहेब ने यह तय किया कि यह पद विद्यासागर को देना चाहिये लेकिन इन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहा "मुझे रुपये का लालच नहीं है मैं

तो काम करना चाहता हूं। मैं यहां रहकर ज्यादा काम कर सकता हूं" आखिरकार उस पद पर उन्होंने अपने मित्र तारानाथ तर्कवाचस्पति को नियुक्त करवाया।

माता-पिता की भक्ति

एक बार पहले ही बताया जा चुका है कि ईश्वरचन्द्र अपने माता पिता के बड़े ही भक्त थे। पिता की भक्ति के बारे में तो कुछ लिखा गया है अब यहाँ पर एक घटना माता की भक्ति के बारे में भी बता देना उचित समझता हूं। जब ये फोर्ट विलियम कालेज में थे इनके घरपर इनके छोटे भाई शम्भू चन्द्र का विवाह तय हुआ। माता जी ने विवाह के दिन आ जाने के लिये ईश्वरचन्द्र जी को खबर भेजी। पर प्रिंसिपल मार्शल साहेब ने उन्हें छुट्टी देने से इन्कार किया क्योंकि कालेज में बहुत सा काम था जो बिना विद्यासागर की मदद के नहीं हो सकता था। विद्यासागर बेचैन होगये। आखिर उन्होंने मार्शल साहेब के सामने जाकर कहा "माता जी का हुक्म है कि तुम फौरन घर चले आवो, इसलिये मुझे तो जाना जरूरी मालूम

होता है क्योंकि मैं उनकी आज्ञा नहीं टाल सकता। अगर आप छुट्टी दें तो दें, नहो तो मेरा इस्तीफ़ा मंजूर कर लीजिये"। माता के प्रति यह भक्ति देख मार्शल साहेब ने इन्हें छुट्टी देदी। ये फ़ौरन एक नौकर को लेकर घर के लिये रवाना हो गये। रास्ते में दामोदर नदी बड़ी तेज़ी से बहती थी, कोई नाव किनारे पर न थी, घर जाने की बड़ी जल्दी थी क्योंकि वक्त बीत रहा था। इन्होंने नौकर को तो लौटा दिया। और खुद नदी को तैर कर पार कर गये। ऐसे ही दो एक और नदी को भी इन्होंने पार किया। डरावने जंगल और झाड़ियों को पार करके सन सनाते हुये दो घड़ी रात बीतनेपर वे घर पहुंचे। बारात तो जा ही चुकी थी। माता ना उम्मेद हो चुकी थीं पर बेटे की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ीं और बड़े प्यार से उनको छाती से लगा लिया। माता की भक्ति का ऐसा अच्छा नमूना बहुत कम मिलेगा।

स्वाधीनता

विद्यासागर जी बड़े ही निर्भीक और आज़ादी पसन्द करने वाले थे। एक दिन ये हिन्दू कालेज

के प्रिंसिपल कार साहेब से मिलने के लिये गये। जब विद्यासागर जी जाकर खड़े हुये तौभी कार साहेब टेबिल के ऊपर टांग फैलाये कुर्सी पर लेटे ही से रहे। विद्यासागर को बुरा तो मालूम हुआ पर दिल में यह ठानकर कि मैं इसका सबक़ मौके पर पढ़ाऊंगा कुछ बोले नहीं और खड़े खड़े बात चीत कर के लौट आये। थोड़े ही दिन बाद कार साहब को भी ईश्वरचन्द्र के पास किसी काम के लिये जाना पड़ा। विद्यासागर को यह अच्छा मौका हाथ लगा। वे भी टेबिल पर अपना पैर फैलाकर ठीक उसी तरह कुर्सी पर लेट गये। साहेब ने खड़े २ उनसे बात किया पर भीतर ही भीतर नाराज़ भी बहुत हुये। उन्होंने इसकी रिपोर्ट शिक्षा कमेटी के मेम्बर माट साहेब से की। माट साहेब ने विद्यासागर से इसका जवाब मांगा। जवाब में उन्होंने कहा मैं जब कार साहेब के यहां गया तो उन्होंने मेरा ऐसे ही स्वागत किया मैं ने समझा शायद अंग्रेजों की सभ्यता में भले मानुसों से ऐसे ही मिला जाता है इसलिये मैंने भी वैसे ही किया। इसकी जिम्मेदारी तो कार ही साहब पर है। माट साहेब ईश्वर चन्द की इस

स्वतंत्रता से बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने कार साहेब को मजबूर किया कि वे विदूयासागर से मेल कर लें। कार साहेब ने ऐसा ही किया। इसमें कोई भी सन्देह नहीं जो अपना स्वयं मान करना नहीं जानते वे दूसरों से क्या मान करा सकते हैं।

एक बार अपने एक अफसर से अनबन हो जाने के कारण उन्होंने नौकरी छोड़ दी। इस पर उनके सम्बन्धी लोगों ने खीज कर कहा "नौकरी छोड़ दोगे तो खाओगे क्या?" निडर विदूयासागर ने उत्तर दिया "तरकारी बेचूंगा, मोदी की दूकान करूंगा लेकिन जिस नौकरी में इज्जत जाने का भी भय हो उसे न करूंगा।"

दया और दानशीलता

जब वे नौकरी छोड़ कर बैठे तो उस वक्त भी लड़कों के पढ़ाने में खर्च देने आदि में उन्होंने ज़रा भी कमी न की। पिता जी को ५०) रु० महीना कर्ज़ लेकर भेज दिया करते थे इसी अवस्था में उन्होंने मैट साहब के कहने से कप्तान बैंक को संस्कृत सिखलाई थी। शिक्षा समाप्त होनेपर साहेब ५०) मासिक हिसाब विदूयासागर को तनख्वाह देने लगे।

लेकिन ऐसी ग़रीबी हालत में भी निर्लोभी विद्या-सागर ने कहा "आप मैट साहेब के परम मित्र हैं और मैं भी उन्हें अपना परम हितैषी समझता हूँ इसलिये मैं आपसे वेतन नहीं ले सकता।"

बहुत दिनों तक विद्यासागर बेकार बैठे रहे। सन् १८५१ ई० के प्रारम्भ में संस्कृत कालेज के मंत्री तथा सहकारी मंत्री का पद तोड़ कर १५०) रु० महीने की केवल एक ही जगह कायम कर दी गई। इस जगह पर विद्यासागर जी नियुक्त हुये। इस पद पर रहकर विद्यासागर ने बहुत से ग्रंथ छपवाये और उनका प्रचार कराया।

इस तरह विद्यासागर हमेशा दूसरों की भलाई के लिये कुछ न कुछ किया ही करते थे। उन्हें लाट-साहब भी बहुत मानते थे। बङ्गाल के धनी और मानी लोगों में भी उनका काफी सम्मान था। जब एक ओर लोग उनकी इतनी इज्ज़त करते थे तो दूसरी ओर ग़रीबों के दुख में भी वे हमेशा योग देते थे।

एक बार एक मेहतर सवेरे इनके पास रोता हुआ आया और कहने लगा "मेरी स्त्री को हैज़ा

होगया है बिना आपकी मदद के वह बच नहीं सकती" विद्यासागर ने सुनते ही अपने नौकर के हाथ दवाइयों का बक्स भेज दिया और स्वयं मोटर लेकर उनके घर पर पहुँच गये। दिन भर उसकी दवा की और शाम को रोगी को ठीक करके घर आये और स्नान पूजा करके भोजन किया। ईश्वरचन्द्र चन्द्रमा और सूर्य की तरह गरीब, धनी, ऊंच नीच किसी का भी कुछ विचार न कर सब के साथ एक तरह का बर्ताव करते थे।

विद्यासागर को इस समय १५०) रु० महीने मिलते थे। कालेज की रिपोर्ट तय्यार करते ही मैट साहेब के कहने से इनको ३००) रु० मिलने लगा। इनके कहने से बंगाल में बहुत से स्कूल और नार्मल स्कूल खोले गये। उन स्कूलों को देखने के लिये ईश्वरचन्द्र स्पेशल इन्सपेक्टर बनाये गये। जिसके लिये इनको २००) रु० मासिक अलग मिलने लगा। इस तरह अब वे ५००) महीने पाने लगे। इन्होंने शिक्षा विभाग की अच्छी उन्नति की।

छोटे लाट हालिडे साहेब से ईश्वरचन्द्र जी की बहुत बनती थी और ये प्रति वृहस्पतिवार को

उनके यहां मिलने जाया करते थे। जब ये उनसे मिलने जाते थे तो सदा ही पैरों में चट्टी और बदन पर चादर डाल कर जाते थे। लाट साहेब के कहने से ये कभी कभी पतलून वगैरह पहन कर भी गये, पर इसमें इन्हें बड़ी दिक्कत मालूम होती थी। तीन बार तो ये ऐसे ही गये पर जब चौथी बार वहां से लौटने लगे तो इन्होंने कहा कि "यह मेरा आपका आखिरी मिलना है अब मैं न आऊंगा"। लाट साहब को बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ वे बोले "क्यों पंडित जी आप क्यों न आइयेगा" ? उन्होंने जवाब दिया "मुझे पतलून कोट पहने में बड़ी दिक्कत होती है" लाट-साहेब ने हंस कर कहा "जिसमें आपको आराम मिले वही वस्त्र पहनकर आया कीजिये। इसके बाद ईश्वर जी सदा अपनी ही पोशाक में उनके पास जाया करते थे।

शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर येग से विद्यासागर की नहीं पटती थी। इसी वजह से इन्होंने लाटसाहेब के हज़ार लिखने पर अपने पद से इस्तीफ़ा दे ही दिया। उन्होंने अपने इस्तीफ़े में लिखा था "मेरे ज़िन्दगी के आखिरी दिन अपने मुल्क के स्त्री, पुरुषों के ज्ञान की उन्नति करने और

साधारण शिक्षा प्रचार में लगेंगे और इस ब्रत का अंत चिता की भस्म से होगा" । उन्होंने अपनी बात को पूरी ही करके छोड़ा इसमें कोई भी शक नहीं है ।

विद्यासागर एक स्वतंत्र विचार के आदमी थे । जब तक उनकी नीति चली तब तक उन्होंने शिक्षा विभाग का कार्य्य किया और जब उनकी न चलने लगी तो वे तुरन्त ५००) रु० की नौकरी छोड़कर अलग होगये । इसके बाद बड़े बड़े अंग्रेज़ों ने इन्हें नौकरी दिलाने की कोशिश की पर ये नौकरी करने को राज़ो न हुये । बहुत मित्रों ने इन्हें वकालत करने को कहा--पर ये इस पर भी राज़ी न हुये ।

स्त्री शित्ता

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्त्री शिक्षा के बड़े ही प्रेमी थे । उस समय राजा राधाकन्त देव बहादुर की कोशिश से कुछ स्त्री-शिक्षा का प्रचार शुरू हुआ था । कलकत्तें में एक महिला-शिक्षा-समिति स्थापित हुई जिसके द्वारा चार कन्या पाठशालायें खोली गईं । चार वर्ष काम करने के बाद धन की

कमी से यह समिति टूट गई। २८ वर्ष बाद जे० ई० डी० वेथून साहेब कलकत्ते में लाटसाहेब की सभा के कानून के मंत्री होकर आये। येउदार और सीधे आदमी थे। गोकि ये एक बड़े ऊंचे पद पर थे पर इसका इनको तनिक भी घमंड न था— इन्होंने बंगाल में स्त्री-शिक्षा के लिये बड़ा ज़ोर लगाया था।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की इनसे मित्रता होगई और दोनों ने मिलकर बंगाल में स्त्री शिक्षा की नींव डाल दी। वेथून साहेब ने इन्हीं की सलाह से एक वालिका विद्यालय खोला जिसका सारा भार ईश्वरचन्द्र पर छोड़ दिया। वे भी तन मन धन से उसमें लग गये। वेथून साहेब अध्यापिकाओं का खर्च अपने पास से देते और भी बहुतेरे खर्चे ये अपने पास ही से दिया करते थे। स्कूल के बालि-काओं को पहुँचाने के लिये गाड़ियां बनाई गईं। उसका भी ख़र्च साहब अपने पास ही से देते थे। स्कूल की इमारत पहले अपनी न थी पर पीछें बेथून साहब के खर्चे से इमारत भी अपनी कर ली गई। एक बार गंगा के उस पार बेथून साहेब को कहीं कन्या पाठशाला खोलने के लिये जाना पड़ा। रास्ते

में वे भीग गये और बीमार पड़ गये। इसी बीमारी से वे मर भी गये।

उनकी मृत्यु से ईश्वर चन्द्र को बड़ा ही दुःख हुआ। ये प्रायः उनकी याद करके रोया करते थे। बहुत सी कठिनाइयों का सामना करते हुये ये विद्यालय को चलाते रहे। बेथून साहेब मरते समय अपने विद्यालय के लिये बहुत सा रुपया लिख गये थे। पहले इसका नाम हिन्दू बालिका विद्यालय था परन्तु उनके मरने के बाद विद्यासागर ने उसका नाम बेथून विद्यालय कर दिया। बेथून साहब के मरने के बाद विद्यालय को चलाने में ईश्वर चन्द्र जी को बड़ी मुश्किल पड़ने लगी इसलिये इसका भार लेडी कैनिंग को सौंप दिया गया जिनके पति यहाँ के बड़े लाट थे और उन्होंने उसके चलाने में बड़ी मदद दी।

विद्यासागर जब कभी विद्यालय देखने जाते तो वहां बेथून साहब की बनी मूर्ति को देखकर रो देते थे। वे उनको महात्मा कहा करते थे। विद्या-सागर ने छोटे लाट हालीडे की ज़बानी कह देने से ही ५० कन्याविद्यालय खोला था। जब इनसे यंग से अनबन हुई और इन्होंने इस्तिफ़ा दिया तब

इन सब पाठशालाओं का खर्च विद्यासागर को स्वयं देना पड़ा। गो कि नौकरी छोड़ कर बैठे थे और कर्ज़ा से भी लदे हुये थे लेकिन विद्यासागर ने स्त्री-शिक्षा की ओर से ध्यान नहीं हटाया। इन विद्यालयों के चलाने में इनके कई मित्र और बहुत से अंग्रेज़ अफ़सर भी चन्दा दिया करते थे। अपनी माता के नाम से भगवती वीरसिंह ग्राम में भी उन्होंने कन्या पाठशाला खोली थी। उसका खर्च भी वे अपनी ही जेब से दिया करते थे।

उन्हीं दिनों मेरी कारपेण्टर, जो भारत की भलाई चाहने वाली एक मशहूर अंग्रेज़ स्त्री थी, कलकत्ते आईं। वे आकर ईश्वरचन्द्र जी से मिलीं। स्त्री शिक्षा में इनके विचारों को सुन कर वे बड़ी प्रसन्न हुईं। वे विद्यासागर की परम मित्र बन गईं। जब तक वह कलकत्ते में रहीं जहाँ कहीं जाती थीं विद्यासागर को भी अपने साथ ले जाती थीं। एक बार गाड़ी पर चढ़ कर विद्यासागर किसी गाँव में कन्या पाठशाला देखने जा रहे थे। रास्ते में उनकी गाड़ी उलट गई और इनको गहरी चोट आई। मेरी कारपेण्टर पीछे

गाड़ी में चढ़ी जा रही थीं भीड़ देख कर वे उतर पड़ीं और विद्यासागर को बेहोश देख कर उन्हें गोद में उठा लिया। बहुत दवा करने के बाद वे ठीक हुये लेकिन इनका फेफड़ा सदा के लिये बिगड़ गया और ये अक्सर बीमार पड़ जाया करते थे।

बुढ़ापे में भी विद्यासागर ने स्त्री शिक्षा के लिये बड़ा परिश्रम किया। इनके मरने पर बंगाल की स्त्रियों ने १६७०) रु० बेथून कालेज की कमेटी को स्मारक रूप में भेजा था।

समाज सुधार

राजा राम मोहन राय के बहुत उद्योग करने पर लार्ड विलियम वैन्टिन्ग ने सन् १८२९ ई० की चौथी तारीख़ को सती प्रथा के बन्द कर देने की आज्ञा जारी की थी। पहले तो यह प्रथा ऐसे चली थी कि पति के मरने के बाद स्त्री उसके प्रेम में जल कर मर जाती थी। पर धीरे २ यह प्रथा बड़े ज़ोरों में चल निकली और स्त्रियाँ दुनियाँ के भय से भी जलने लगीं। धीरे २ यह प्रथा इतनी भया-नक होगई कि पति के मरने के बाद उसकी स्त्री

को लोग ज़बरदस्ती चिता पर बिठा देते थे चाहे वे स्त्रियाँ जलना चाहती हों या न चाहती हों। ख़ैर किसी तरह यह प्रथा बन्द हो गई।

एक तरफ़ तो यह बन्द हो रही थी और दूसरी ओर विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। सती होने में तो एक घण्टे का दुख रहता था पर अब विधवाओं का दुख तो नौजवान स्त्रियों के लिये जन्म भर का रोग होगया। एक ही घर में बूढ़ा बाप अपनी कई शादियां कर लेने की आज्ञा पा जाता है और नई स्त्री को लाकर घर में बिठा देता है उसी घर में उसकी विधवा पुत्री, सन्यासिनी का जीवन व्यतीत करती है। कैसा घोर अनर्थ है। ईश्वर जाने यह कुरीति हमारे समाज के अन्दर कैसे घुस पड़ी। पुरुष चाहे जितनी भी शादी करले वह तो ठीक समझा जाता है पर स्त्री का पति के मरने के बाद शादी करना बिल्कुल बेठीक माना जाता है। इसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आता। मेरा तो ख्याल है कि यदि स्त्री को फिर शादी करने की आज्ञा नहीं दी जाती तो पुरुष को भी इसका हक़ न होना चाहिये कि स्त्री के मरने पर वह फिर शादी करले। और यदि एक को

शादी करने का हक़ है तो दूसरे को भी अवश्य यह हक़ हासिल हो जाना चाहिये।

विधवाओं के दुख को देख कर विद्यासागर का कोमल हृदय पिघल जाता था। जब कि यह कालेज में पढ़ते थे उन्होंने अपने वृद्ध गुरू वाचस्पति की बालिका स्त्री को देखा उस समय इन्होंने इस बुरी प्रथा को समाज से निकालने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी। विद्यासागर ने विधवा विवाह को शास्त्र के अनुसार बताने में कोई भी कसर न रक्खी। इनकी सच्ची पंडिताई और आत्मिक-बल का परिचय इस बड़े काम में लगने से मिलता है। इस कार्य्य में विद्यासागर को निन्दा और प्रशंसा, तिरस्कार और पुरस्कार 'अपमान और सम्मान का समान रूप से सामना करना पड़ा। यह ऐसा भारी आन्दोलन था कि अदालत जज और वकील' मंदिर में पुजारी, बाजार में दूकानदार और सौदा लेने वाले घर में स्त्रियाँ जिधर देखो उधर विधवा विवाह की चर्चा कर रहे। कोई विद्यासागर को भला और कोई बुरा कहता था। विधवा विवाह के पक्ष का समर्थन और विधवा विवाह को शास्त्रानुकूल साबित

करना ही विद्यासागर के जीवन का एक बड़ा ब्रत होगया था। इसको पूरा करने में उन्होंने अपने जीवन का अधिक समय और अपनी आमदनी का एक बहुत बड़ा भाग लगा दिया।

कलकत्ते में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह का आन्दोलन जारी किया। तब बोधिनी नामक पत्रिका में विधवा विवाह के पक्ष में इनके ज़ोरदार लेख निकलने लगे। चारों ओर एक धूम सी मच गई। शास्त्रार्थों में विद्यासागर की विजय होने लगी। इन्होंने सारा दिन रात शास्त्रों के पढ़ने में लगा दिया। एक बार संस्कृत कालेज की लाइबेरी में विद्यासागर जल पान कर के बैठ गये और शास्त्र देखने लगे। एक श्लोक का अर्थ नहीं लगता था। रात होगई लेकिन उसका ठीक ठीक अर्थ न मालूम हुआ। अन्त में यह उदास होकर घर को लौटे। रास्ते में उन्हें उसका ठीक अर्थ मालूम होगया। ये फौरन पीछे लौट पड़े और कालेज में पहुँच कर उस श्लोक का अर्थ लिखने लगे। इस प्रकार लिखते लिखते रात बीत गई। सबेरे की ठंडी हवा लगने और धूप निकल आने पर उन्होंने लिखना बन्द कर दिया।

ईश्वरचन्द ने विधवा विवाह पर एक बड़ी अच्छी पुस्तक लिखी। जब वह तैय्यार होगई तब अपने पिता ठाकुरदास के पास ले गये और कहा "मैंने यह पुस्तक शास्त्रों के प्रमाणों के साथ विधवा विवाह के पक्ष में लिखी है आप इसे सुन लीजिये। जब तक आप सहमत न होंगे तब तक मैं इस पुस्तक को प्रकाशित न करूँगा"। इस पर ठाकुरदास बोले "यदि मैं इस काम में सहमत न होऊं तो तुम क्या करोगे ? ईश्वरचन्द्र ने कहा "तब फिर मैं इसे आपके जीवनकाल में प्रकाशित न करूंगा। उसके बाद जैसी इच्छा होगी वैसा करूंगा"। ठाकुरदास बोले "अच्छा कल एकान्त में मन लगाकर सारी पुस्तक आदि से अन्त तक सुनूंगा उसके बाद मैं अपनी राय दूंगा"। दूसरे दिन उन्होंने सारी पुस्तक सुन ली और पूछा "क्या जो कुछ हमने लिखा है उसपर विश्वास है ? क्या वह शास्त्र अनुकूल है ? ईश्वरचन्द्र ने कहा "हॉ, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। तब पिता ने कहा "अच्छा मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं है तुम इस विषय में जो कुछ करना चाहते हो करो" इसी प्रकार उन्होंने अपने माता की भी आज्ञा लेली।

माता पिता की आज्ञा लेकर ईश्वरचन्द्र विधवा विवाह के कार्य्य में जी जान से लग गये। इनके बहुत से मित्रों ने भी इनको इस काम में मदद दी। राजनारायण वसु ने इनको इस विषय में सब से अधिक मदद दी। विधवा विवाह शास्त्र विहित हो गया पर अब इनके सामने एक बड़ा सवाल पेश हुआ। वह यह था कि विधवा के पुत्र उस समय के कानून के अनुसार पिता के धन के अधिकारी न समझे जांयगे।

इस सवाल को हल करने के लिये गवर्नमेंट की सेवा में एक अर्ज़ी दी गई जिसमें बड़े बड़े सज्जनों के दस्तख़त थे। इस पर एक हज़ार से ऊपर लोगों ने दस्तख़त किये थे। आनरेबुल जे० पी० ग्रैंट ने बड़े ज़ोर से विधवा विवाह का प्रस्ताव कौंसिल में पेश किया। इसमें विद्यासागर की भी सम्मति उपस्थित की गई। अन्त में इन्हीं के उद्योग से १८५६ ई० की जुलाई मास में गवर्मेंट की व्यवस्थापक सभा में विधवा विवाह का कानून पास होगया।

कानून पास होने के बाद ही पं० रामधन तर्क वागीश के पुत्र श्रीचन्द्र विद्यारत्न की शादी वर्दवान जिले के निवासी ब्रह्मानन्द मुखोपाध्याय की दश

वर्ष की विधवा कन्या कलावती से होगई। विवाह होते ही सारे बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के विजय का डंका बज गया। बंगाल के इतिहास में यह दिन सोने के अक्षरों से लिखा रहेगा। विवाह के दिन दर्शकों की इतनी भीड़ थी कि तिल रखने की भी जगह न थी केवल आदमियों के सिर ही सिर दीखते थे। विवाह के बाद पुरानी प्रथा के लोग ईश्वरचन्द्र के जानी दुश्मन बन गये और उनको मार डालने की भी धमकी दी। पर ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर हिमालय की तरह अटल रहे। उनका उत्साह और भी बढ़ गया।

जब विद्यासागर के पिता को यह बात मालूम हुई कि बहुतेरे आदमी ईश्वरचन्द्र को मार डालने पर तैय्यार हैं तो उन्होंने अपने घर के दरबान श्रीमन्त सरदार को विद्यासागर की रक्षा के लिये कलकत्ते भेज दिया। एक दिन आधी रात को कालेज से घर आते समय ठनठनिया में विद्यासागर ने देखा कि कई आदमी उन पर चोट करने के लिये आगे बढ़ रहे हैं। विद्यासागर उन लंबे तड़ंगे शत्रुओं को देखकर न तो डरे और न चिन्तित हुये। केवल उन्होंने फिरकर अपने नौकर श्रीमन्त को

पुकारा। श्रीमन्त ने कहा–"तुम चलो न। कौन आता है यह मैं देख लूंगा"। श्रीमन्त के उत्तर का ढंग देख कर चोट करने वाले समझ गये कि विद्यासागर अकेले नहीं हैं और फिर बैरियों की हिम्मत आगे बढ़ने की न पड़ी।

सिपाही विद्रोह के समय भी श्रीमंत विद्यासागर के साथ ही रहता था। संस्कृत कालेज में अंग्रेज़ी सेना के ठहरने का स्थान दिया गया था। एक दिन दिन के समय श्रीमन्त विद्यासागर के पास कालेज में जाने लगा। द्वार पर दो गोरों ने उसे रोका। उसके हाथ में लाठी भी थी। वह जबरदस्ती भीतर घुसता ही जाता था। वह जितना बली था उतना साहसी भी था। गोरों ने पहले तो मना किया पीछे उसे हटाने लगे। उसने दोनों गोरों को अपने दोनों ओर गिरा दिया। बहुत झगड़ा बढ़ने पर गोरों के अफ़सर ने उसे पहचान लिया और उसे छोड़ दिया।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने लगभग १०० विधवा विवाह करवाये। उनका उत्साह दिन दूना रात चौगुना बढ़ता गया। लेकिन आखिर में रुपये की बड़ी कमी आगई। विवाह में खास कर उन्हीं

का खर्च होता था। पहले तो बहुत से लोगों ने उन्हें मदद देने का वादा किया परन्तु धीरे २ लोग खिंचने लगे। केवल यही अकेले मैदान में डटे रहे। धन की कमी से इतना इनको दुःख हुआ कि ये फिर नौकरी करने पर तैयार हुये। पर इन्हें अपने मन के मुताबिक कोई नौकरी ही न मिली। कुछ भी हो विद्यासागर मर्द की तरह अपने कार्य्य को करते रहे।

अभी विधवा विवाह का काम कर ही रहे थे कि इनका ध्यान एक दूसरी बुराई की ओर गया। वह प्रथा यह है कि बंगाल में जो कुलीन ब्राह्मण हैं वे एक स्त्री के रहते हुये भी कई विवाह कर डालते हैं। यद्यपि बहु विवाह प्रथा सारी हिन्दू जाति भर में है पर इसका पूर्णरूप आपको बंगाल में ही देखने को मिलेगा। हुगली ज़िले में एक २ कुलीन ब्राह्मण के हिस्से में ११ से अधिक स्त्रियों की औसत पड़ती है। इनमें सब से अधिक विवाह करके अपनी कुलीनता की जिन्होंने रक्षा की थी वे महा-पुरुष जब ५५ वर्ष के थे तब ८० विवाह कर चुके थे। शायद अपने शेष जीवन में अस्सी विवाह तक किये हों तो कोई आश्चर्य नहीं। एक महाशय

जिनकी अवस्था १८ वर्ष की थी ११ स्त्रियों के मस्तक में सौभाग्य सिन्दूर भर चुके थे। ऐसे ही एक महात्मा ने २० वर्ष की अवस्था में १६ स्त्रियों को अपनाया किया था। वैरीसाल जिले में कलसकारी एक गाँव है। यहाँ एक ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय नामी एक महात्मा निवास करते थे। जिस समय ईश्वरचन्द्र विद्या सागर जी ने बहु विवाह की सूचियाँ बनाई थीं उस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी उस समय तक इन्होंने केवल १०७ विवाह किये थे। पश्चात् मृत्यु के समय तक इन्होंने कितनी स्त्रियों को सौभाग्यवती बनाया दैव ही जाने। ओह! कितना दानवी कार्य्य है। इसको पढ़ कर दिल टुकड़े २ हो जाता है और रोवें खड़े हो जाते हैं।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने इस प्रथा को भी हटाने के लिये गवर्नमेंट के दरबार में अर्जी भेजी परन्तु सुनाई न हुई। इस बात का उन्हें बड़ा दुःख रहा। ईश्वरचन्द्र ने सोचा था कि वह इस करुण कहानी को विक्टोरिया से सुनायें पर बीच ही में उनकी मृत्यु होगई। यदि वे थोड़े दिन और ज़िन्दा रहते तो इसे मिटा ही के रहते।

विद्यासागर जी केवल विधवा और बहु विवाह के ही रोकने की कोशिश नहीं करते रहे वरन् वे सामाज की सारी बुराइयों को रोकने के लिये सदा तैय्यार रहते थे। उन्होंने एक प्रतिज्ञा पत्र बनाया था जिस पर वे हस्ताक्षर लिया करते थे।

ईश्वरचन्द्र जी ने स्त्री जाति के लिये जो उपकार किये हैं उसके लिये स्त्री जाति सदा के लिये उनकी ऋणी रहेगी। संसार से बुराइयों को मिटाने के लिये ही ईश्वर ने उनको संसार में भेजा था। वे अपनी शक्ति भर कोशिश कर गये पर दुःख इस बात का है कि उनके बाद कोई ऐसा एक भी पुरुष न हुआ जो उनके कामों को आगे बढ़ाता। वे समाज की बुराइयों को खोल गये सुधारने के उपाय भी बता गये। अब ऐसे व्यक्तियों की ज़रूरत है जो इस कार्य्य को उठा लें और उसे आगे बढ़ावें।

शिक्षा प्रचार

बंगाल में धर्म-शिक्षा का नीच क़ौमों में प्रचार करने वाले पहले आदमी राजा राममोहनराय थे। उन्होंने अपना सब कुछ इसी धर्म शिक्षा के

प्रचार में ही लगा दिया था। यहां तक कि धन की कमी के कारण इङ्गलैण्ड के ब्रिस्टल नामी नगर में उनकी मृत्यु भी बड़े ही कष्ट में होगई थी।

उनके बाद महर्षि देवेन्द्र नाथ ने भी अपने जीवन भर इस कार्य्य को पूरी शक्ति के साथ किया। लेकिन फिर भी अभी तक काम कुछ संतोष-जनक न हो पाया था। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने इस कार्य्य को उठा लिया। इन्होंने बड़े ही उत्साह से शिक्षा का काम किया और इसमें इनको बहुत कुछ सफलता भी मिली।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि इन्स्पेक्टर के पोस्ट पर रह कर विद्यासागर ने सैकड़ों कन्याओं और लड़कों के स्कूल खुलवाये। ५००) रु० मासिक की नौकरी छोड़ने के बाद इनको भय था कि वे इस शिक्षा प्रचार के कार्य्य को अच्छी तरह न कर सकेंगे। लेकिन ईश्वर की कृपा से उनका उत्साह और भी बढ़ गया और साधन भी स्वयं आगे आते गये। सबसे पहले इन्होंने बीरसिंह में ही एक बालकों की पाठशाला खोली। उसका खर्च वे अपने ही पास से देते

रहे। फिर वहीं पर कन्या पाठशाला खोली। फिर किसानों और दूसरे मज़दूरों के लिये एक नाइट स्कूल भी जारी कर दिया। आस पास के लोग दिन भर अपना काम करते थे और रात को यहां आकर पढ़ लिया करते थे। ईश्वर चन्द्र के इस काम से इनके पिता ठाकुरदास जी बड़े प्रसन्न हुये क्योंकि वे बहुत दिनों से यह चाहते थे कि वीरसिंह में एक अपनी पाठशाला खोली जाय जिससे आस पास के गृहस्थ लोग भी लाभ उठा सकें। कहा जाता है जिस दिन विद्यासागर अपने घर वीरसिंह पहुँचे उसी दिन उन्होंने स्कूल की नीव खोदने के लिये मज़दूरों को बुलवाया लेकिन उस समय कोई मज़दूर न मिला। विद्यासागर ने स्वयं फावड़ा लेकर स्कूल की नींव खोद डाली। जिस विद्यासागर से अपने स्कूलों का मुआइना करा कर लोग अपने को धन्य मानते थे उन्होंने स्वयं अपने गांव के स्कूल की नींव खोद डाली यह कितने गौरव की बात है। इन तीनों पाठशालाओं में विद्यार्थियों से फीस नहीं ली जाती थी। उन्हें कागज़, पेंसिल, स्याही भी मु.फ्त दी जाती थी। विद्यासागर के पिता लड़कों का ख्याल रखते थे और उनकी माता

विद्यार्थियों को स्वयं भोजन बना कर खिलाती थीं। तीनों स्कूलों में ३००) रु० मासिक खर्च पड़ते थे जो विद्यासागर स्वयं देते थे। पीछे से सरकार ने जब पाठशाला को अपनाया तो सरकार से भी उन्हें रुपया मिलने लगा। बीरसिंह में अभी भी स्कूल उनकी माता के नाम से चलता है। स्कूल का नाम "भगवती पाठशाला है।" ईश्वरचन्द्र के बड़े पुत्र नारायण बाबू इसमें बड़ी सहायता देते थे।

ईश्वरचन्द्र जी को पाठशालाओं के खुलवाने की धुन थी जहाँ कहीं भी जाते पाठशाला खुलवाते थे। सदा अपने धनी मानी मित्रों से पाठशालाओं के लिये धन देने का अनुरोध किया करते थे।

सन् १८४८ से १०,४०, में विद्यासागर और पं० मदन मोहन तर्कालङ्कार ने मिल कर एक प्रेस खोला जिसका नाम संस्कृत प्रेस रक्खा गया। ईश्वरचन्द्र ने इस प्रेस को इस लिये खोला था कि अपने बनाये ग्रंथ इसी में छापेंगे। साथ ही अपने पसन्द के ग्रन्थ भी उससे निकालेंगे।

इस प्रेस से निकली किताबों को बेंचने के लिये एक पुस्तकालय भी खोला गया था जिसका नाम संस्कृत प्रेस डिपाज़िटरी रक्खा गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कलकत्ता में एक ट्रेनिङ्ग स्कूल का भार भी अपने ऊपर ले लिया। पीछे से इसका नाम बदल कर हिन्दू मेट्रिपोलिटन इन्स्टीट्यूट रक्खा। बड़े ही उद्योग से इसमें एफ० ए० क्लास भी खुलवाया। जब इसका नतीजा अच्छा हुआ तो इसमें बहुत से विद्यार्थी आये। धीरे २ बी० ए० क्लास खोला गया उसका भी नतीजा अच्छा हुआ। पश्चात् फिर इसमें एम० ए० क्लास भी खोला गया। उसमें भी परीक्षा फल सराहनीय रहा। बी० ए० और एम० ए० के आनर्स कोर्स की भी व्यवस्था की गई। सन् १८८१ ई० में विश्वविद्यालय ने बी० एल० की परीक्षा देने का भी अधिकार मेट्रोपालिटन इन्स्टीट्यूट को दे दिया। इस तरह यहाँ पर वकालत की भी पढ़ाई होने लगी। इस इन्स्टीट्यूट के बाद और भी बहुतेरे कालेज कलकत्ता में खुले पर यह अपने किस्म का एक अनोखा ही कालेज था। विद्यासागर ने मरते दम तक इसके लिये उद्योग किया।

बंगला साहित्य के सङ्गठन और बंगला की शिक्षा देने लायक ग्रंथ बनाने के लिये और अच्छी पुस्तकों के चुनने के लिये एक सेन्ट्रल टेक्स्ट बुक

कमिटी बनाई गई। एटकिन्सन साहेब ने जो उस समय शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर थे ईश्वरचन्द्र को उसका मेम्बर बनने के लिये एक पत्र लिखा उसका जवाब ईश्वरचन्द्र जी ने यों दिया "आपके ११ तारीख के पत्र के उत्तर में निवेदन यह है कि विद्यालय की पाठ्य पुस्तकों को चुनने के लिये मैं खुशी से शरीक होता पर दो कारणों से मैं आपके अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ हूं। यह कमेटी जिन पुस्तकों के गुणों और दोषों पर विचार करेगी उनके ग्रन्थकार की हैसियत से उनसे मेरा लाभ और हानि का सम्बन्ध है। ऐसी अवस्था में विचारक की हैसियत से इस कमिटी में मेरा शरीक होना ठीक नहीं जान पड़ता। इसके अलावा मैं यह भी सोचता हूं कि अगर मैं उस कमेटी में मौजूद रहा तो लोग मेरी पुस्तकों के बारे में अपनी स्वतंत्र राय न दे सकेंगे ऐसी हालत में मैं कभी भी उस कमेटी का मेम्बर बनाने के लिये सम्मति नहीं दे सकता।"

पाठकों को भली भांति मालूम होगया होगा कि ईश्वरचन्द्र जो कितने सच्चे और निस्वार्थी थे। यदि आज कल का कोई ग्रेजुयेट होता तो

शिफ़ारिस करके ऐसी कमिटी का मेम्बर हो जाता।

ईश्वरचन्द्र जी ने शिक्षा प्रचार कर के बङ्गाल को सर्वदा के लिये अपना ऋणी बना छोड़ा है। वास्तव में ऐसे ही नर रत्नों से देश का मुख उज्वल होता है।

पारिवारिक जीवन

बालको ! अभी तक आपको ईश्वरचन्द्र जी के सामाजिक जीवन के बारे में बतलाया गया। मैं अब कुछ बातें ऐसी लिखूंगा जिससे ईश्वरचन्द्र जी के परिवार के जीवन के विषय में कुछ मालूम होगा। इनकी शादी १८ वर्ष की उम्र में हुई थी। इनके एक पुत्र नारायणचन्द्र विद्यारत्न और चार कन्यायें हुई जिनके नाम क्रमानुसार ये हैं' हेमलता देवी, कुमुदनी देवी और शरतकुमारी देवी। सारा परिवार ईश्वरचन्द्र जी के पिता ठाकुरदास जी के साथ बीरगांव में रहता था।

ईश्वरचन्द्र जी अपने माता पिता के बड़े आज्ञाकारी और भक्त पुत्र थे। ठाकुरदास जी इन्हीं के अनुरोध से अपनी नौकरी छोड़ कर पुरखा

की तरह बीरसिंह गांव में रहने लगे। वे पास पड़ोस के लोगों की भी खबर रखते थे।

विद्यासागर की माता भगवती साक्षात् भगवती का स्वरूप ही थीं। अपने गृहस्थी का काम करके पड़ोस के लोगों की भी देख रेख रखती थीं। अन्न और वस्त्र की किसी को तकलीफ़ नहीं होने देती थीं। एक बार ईश्वरचन्द्र जी ने ६ लिहाफ बनवाकर भेजे। माता जी ने पड़ोस के लोगों को जाड़ा खाते देखकर लिहाफ़ उन्हें बाँट दिया और कलकत्ते पत्र भेज दिया कि वे लिहाफ़ तो मैंने पड़ोसियों में बाँट दिया घर के लिये और भेज दो। माता का पत्र पाकर ईश्वर ने लिखा, "माता जी, घर के अलावे और कितने लिहाफ़ भेज दूं जिन्हें आप पड़ोसियों तथा अन्य दीन दुखियों को बाँट दें।" ऐसी ही तो माता थी जिनके ईश्वर-चन्द्र से उदार पुत्र थे।

ईश्वरचन्द्र जब घर जाते थे तो सैकड़ों रुपये की दुअन्नी चवन्नी अठन्नी भुना ले जाते और ग़रीबों को बाँटा करते थे। दवाई का बक्स तो हमेशा साथ रहता था। आसपास के गावों तक के लोग दवा लेने आ जाते थे। इनके घर जाने पर अपने

ही घर के लोगों को नहीं बल्कि सारे गाँव को आनन्द होता था। एक बार हेरिसन साहेब जो कलकत्ते के कलेक्टर थे मेदिनीपुर जिले में बन्दोबस्त का काम करने गये थे। ईश्वरचन्द्र उस समय बीरसिंह गाँव में छुट्टी पर गये थे। उन्होंने अपनी माता से साहेब के मिजाज़ की तारीफ़ की। माता ने पत्र लिख कर हेरिसन साहेब को बुलवाया। साहेब पत्र पाते ही विद्यासागर के घर गये। साहेब की उम्र बहुत कम थी। माता जी को यह सुनकर और भी आनन्द हुआ कि साहेब बंगला भाषा समझते हैं।

भगवती देवी ने बहुत से भोजन अपने हाथ से तय्यार किया था और आप ही साहेब को खिलाने बैठीं। साहेब ने आते ही बङ्गला रीति से माता जी को प्रणाम किया माता जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया। साहेब ने बड़े आनन्द के साथ भोजन किया। जाते समय साहेब ने विद्यासागर से कहा "यहाँ आकर भोजन कर और आपको माता के दया भाव और आदर से मैं ऐसा सन्तुष्ट हुआ हूँ कि इस दिन की याद मुझे कभी न भूलेगी।"

बातचीत करते २ साहेब ने भगवती देवी से

पूछा, "आपके कितने घड़े धन हैं ?" अपने चारों संतानों को आगे कर भगवती देवी ने कहा, "मेरे धन के ये चार घड़े हैं मुझे और धन की क्या जरूरत है ?" यह ठीक उत्तर सुनकर हैरिसन साहेब बड़े प्रसन्न हुये और विद्यासागर से कहा "पण्डित जी, आपकी माता साधारण स्त्री नहीं हैं तभी तो आप के ऐसा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न कर सकी हैं।" वास्तव में पुत्र की योग्यता ज्यादातर माता ही की योग्यता पर निर्भर है।

विद्यासागर की माता मूर्त्तिपूजा पर विशेष श्रद्धा नहीं रखती थी। वे प्रायः कहा करती थीं, "जिस देवता को हम आप गढ़ते हैं वह हमारा उद्धार कैसे कर सकता है। असली मूर्त्तिपूजा तो मनुष्य पूजा ही में है।"

ईश्वरचन्द्र जी घर जाकर गरीबों को धन बाँटते थे दुष्ट लोग इससे असन्तुष्ट रहा करते थे। एक बार डाकुओं के एक बड़े भारी जत्थे ने रात के समय इनके घर पर हमला किया। ये सपरिवार किसी गुप्त दर्वाजे से निकल गये डाकुओं ने सारा माल असबाब लूट लिया। दिन को दरोगा तहकीकात करने आये और उनकी बातों से मालूम होता

था कि वे कुछ ईश्वरचन्द्र जी के पिता से ऐंठना चाहते हैं। ठाकुरदास दास जी ने साफ़ २ कह दिया, "यदि आप ब्राह्मण बन के आते तो मैं आपको अवश्य कुछ दे देता पर आप दरोगा बन के आये हैं इसलिये मैं आपको इस हैसियत से कुछ भी न दूंगा।" यह कर वे बाज़ार चले गये। विद्यासागर अपने समान उम्र वालों के साथ गेंद खेलने लगे। यह देख दरोगा जी बड़े परेशान हुये। उन्होंने कहा "ठाकुरदास कितना लापरवाह आदमी है मुझे देखकर बाजार चल दिया और यह छोकरा गेंद खेलने लगा।" चौकीदार ने जब ईश्वरचन्द्र जी का असली परिचय दरोगा जी को दिया तो उनके कान खड़े हो गये और वे विद्यासागर से माफी मांगकर चले गये।

विद्यासागर ने परिवार में शांति रखने के लिये सब भाइयों के लिये अलग २ घर बनवा दिये थे लेकिन सब कोशिश करने पर भी वे घर में शांति नहीं स्थापित कर सके। धीरे २ परिवार की अशान्तियों ने उनकी प्रसन्नता नष्ट कर डाली थी।

विद्यासागर दूसरों के लिये सब प्रकार के सुख

भोग का सामान कर देने के लिये तय्यार रहते थे पर आप मारकीन की धोती, मोटी चादर, और साधारण भोजन से सन्तुष्ट रहते थे।

जितना रुपया उन्होंने कमाया उतने में दूसरा कोई लाखपति बन सकता था पर इन्होंने अपनी सारी कमाई ग़रीबों की सेवा में लगा दिया और आप ग़रीब की तरह गुजर करते रहे।

इनके पिता वृद्धावस्था में काशी वास करने लगे थे। ईश्वरचन्द्र जी प्रायः काशी जाकर अपने पिता को देख आते थे। उनकी माता भी पति के साथ काशी वास के लिये गईं पर उनको काशी वास पसन्द न आया इस लिये वे तीर्थ यात्रा करते हुये अपने ग्राम को फिर लौट आईं। आते समय ठाकुरदास जी को भी घर चलने के लिये कहा पर वे राजी न हुये भगवती देवी ने अपने पति से कहा" तुम्हारे मरने में अभी देर है मैं चाहे जहां रहूं इसी काशी में तुम्हारे सामने आकर मरूंगी। मेरे बाद तुम मरोगे। इसी से कहती हूं अभी देर है घर चलो" भगवती देवी का यह कहना बिलकुल सत्य निकला।

एक बार ठाकुरदास जी बहुत बीमार हुये। भगवती देवी अपने पुत्र पुत्रियों को लेकर काशी पहुँची ईश्वरचन्द्र भी काशी गये। बहुत दवा करने पर वे अच्छे हो गये। कुछ दिनों बाद भगवती देवी हैज़े से बीमार हुईं और अचानक इनकी मृत्यु होगई। ईश्वरचन्द्र वहां न पहुँच सके। ठाकुरदास जी ने केवल इतना कहा "जाओ मैं तुम्हें क्या आशीर्वाद दूँ तुम तो स्वयं साध्वी स्त्री हो और अपने ही बल से आगे बढ़ती जाती हो। तुम्हारी ही जीत हुई।"

ईश्वरचन्द्र को अपनी माता की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ और ख़ास करके इस लिये कि उनके मृत्यु के समय वे वहां उपस्थित न हो सके। ये घंटों अपनी माता की प्रशंसा करते हुये रोया करते थे। उनकी क्रिया करने के बाद एक साल भर तक छाता नहीं लगाया, जूता नही पहना और चारपाई पर नहीं सोये।

विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। थोड़े दिनों बाद इनके प्रिय बड़े दामाद गोपालचन्द्र समाजपति की मृत्यु हैज़े से हो गई। इनकी मृत्यु ने ईश्वर-

चन्द्र विद्यासागर का शेष जीवन भी शिथिल कर दिया।

ईश्वरचन्द्र ने अपनी कन्या को सादा भोजन करते देख अपना भी तापसी भोजन बना लिया। जिस प्रकार उनकी विधवा कन्या दिन में एक बार भोजन करती थी उसी प्रकार वे भी एक ही समय भोजन करने लगे।

माता की मृत्यु के बाद ईश्वरचन्द्र बहुत दिनों तक काशी नहीं गये। पिता के लिखने पर उन्हें देखने गये कई दिन पिता जी के पास रह कर फिर कलकत्ते लौट आये किन्तु थोड़े दिन बाद फिर उनकी बीमारी का पत्र पाकर वे काशी गये। एक २ करके घर के सब लोग काशी पहुँच गये। ठाकुरदास जी की मृत्यु होगई। इनकी मृत्यु पर भी विद्यासागर को बड़ा कष्ट हुआ।

ईश्वरचन्द्र जी पिता की मृत्यु के बाद कलकत्ते चले आये। यहाँ आने पर वे बीमार हो गये। पर ईश्वर की कृपा से ये अच्छे हो गये। ईश्वरचन्द्र जी का स्वभाव बड़ा ही मिलनसार था। उनकी मित्र-मंडली उनसे प्रसन्न रहती थी वे दिल्लगी भी बड़े मज़े की करते थे।

लोक सेवा

विद्यासागर ने मनुष्य जाति की सेवा तन, मन और धन से किया। वे एक दानवीर थे। वे हमेशा यही चाहते थे कि उनका दिया हुआ दान या किये हुये परोपकार का काम कोई न जाने। वे अपने किये परोपकार को दूसरे पर नहीं जनाते थे। कहते हैं एक बार मार्ग में कोई आदमी रोता हुआ जाता था। विद्यासागर उस समय टहलने जारहे थे। उन्होंने बढ़ कर उस आदमी से रोने का कारण पूछा परन्तु उसने कुछ उत्तर न दिया और अपने रास्ते पर चला ही गया। तब इन्होंने आगे बढ़ कर उससे बड़े विनय से पूछा "भाई आप क्यों रोते हैं? मेरी बात का कृपा कर उत्तर दीजिये"। यह सुन कर उसने जवाब दिया "मेरा घर नीलाम होने जारहा है। उसी में मेरा परिवार रहता है अब हम लोग कहां रहेंगे।" इन्होंने उसका पता पूछ लिया और ये लौट आये। घर आकर वे कचहरी गये और उस आदमी के नाम से जिसका मकान नीलाम हुआ जाता था २३००) रु० जाकर उन्होंने जमा कर दिया। बड़ी देर तक वह

आदमी जिसका मकान नीलाम होने वाला था अमीन का रास्ता देखता रहा। जब उसने अमीन को आते न देखा तब वह कचहरी में कारण जानने के लिये गया। क्योंकि उसे सन्देह हुआ कि मेरा कर्ज़ देने वाला कहीं दूसरी कार्रवाई न करता हो। जब कचहरी के लोगों से पूछा तो उन्होंने कहा, "तुम्हारा रुपया तो जमा हो गया।" यह सुनकर उसने दुःख से कहा कि मुझ से आप लोग क्यों हँसी कर रहे हैं? मेरा कोई रिश्तेदार भी ऐसा धनी नहीं जो रुपया जमा कर जावे। जब उन्होंने उसे कागज दिखाये तो उसे निश्चय हो गया। सोचने पर उसने ख़याल किया कि हो न हो उसी बंगाली ने मेरा रुपया चुकाया है। एक दिन जब विद्यासागर उधर से निकले तो उसने उनका पैर पकड़ लिया और बोला "धन्य हो दादा तुमने मेरे साथ बड़ा उपकार किया" विद्यासागर ने कहा "सत्य है पर इसका जिक्र किसी से मत करना" यह सुन कर उसने कहा "महाराज चाहे मुझे आप दोषी ठहरावें पर मुझ से यह कभी न होगा कि मैं इस परोपकार का जिक्र किसी से न करूं।" वास्तव में सच्चे परोपकारी ऐसे ही होते हैं।

विद्यासागर बालकपन ही से परोपकारी थे। जब वे पाठशाला में थे उसी समय से अपने सहपाठियों के दुःख में शामिल होते थे और यथाशक्ति उनकी सहायता करते थे।

भूखों को भोजन से, नंगों को कपड़े से, गरीब विद्यार्थियों को विद्यादान से, गरीबों को धन से और बीमारों को दवा से सन्तुष्ट करते थे।

सन् १८७३ ई० में बंगाल में बड़ा भारी अकाल पड़ा लोग मारे भूख के चारों ओर अन्न २ पुकारने लगे। जिधर देखो उधर ही अकाल पीड़ितों की हाहाकार सुनाई देती थी। पति अपनी पत्नी को, भाई बहिन को, माता अपने गोद के बच्चे को छोड़ कर भागने लगी। उस दानवीर ईश्वरचन्द्र ने अपना सर्वस्व देकर दीन-दुखियों की सहायता की। उन्होंने सरकार से भी अच्छी सहायता दिलवाई।

वर्दवान के ज्वर पीड़ितों की भी सहायता उन्होंने अपनी तरफ से किया और सरकार से भी कराया। अच्छे २ डाक्टर और सिविल सर्जन वहां पर भेजे गये ताकि वे मलेरिया को शीघ्र से शीघ्र अच्छा कर सकें। विद्यासागर ने खुद भी अपना

रुपया खर्च करके धर्मार्थ एक अस्पताल खोला जिसमें गरीबों को अच्छी दवा दी जाती थी। ईश्वरचन्द्र ख़ुद भी सब के दर्वाजे जाते और उनकी सेवा करते फिरते थे। यहाँ तक कि वे बीमारों के मलमूत्र भी फेंक दिया करते थे। विद्यासागर का सारा जीवन एक परोपकार और लोक-सेवा का एक इतिहास है। उन सब का वर्णन करना इस पुस्तक में कठिन है।

मृत्यु-काल

सन् १८८७ ई० की पहिली जनवरी को गवर्मेन्ट ने ईश्वरचन्द्र जी को सी० आई० ई० की पदवी दी।

चाहे महात्मा हो, वीर हो, राजनीतिज्ञ हो, योगी हो, कोई भी क्यों न हो संसार में कोई भी ऐसा नहीं हुआ जिसको काल ने अपना भोजन न बनाया हो सब को एक नियत समय पर यह संसार छोड़ना ही पड़ता है। काल यह नहीं देखता कि तुमने अपना काम पूरा कर लिया है या नहीं। जहां समय पूरा हुआ कि कूँच का डंका बजा, फिर एक क्षण भी तुम वहाँ विश्राम नहीं कर

सकते। यों तो मनुष्य के कर्तव्य कभी भी पूरे नहीं हो सकते परन्तु फिर भी ईश्वरचन्द्र ने अपने सारे आवश्यक कार्य्य पूरे कर लिये थे।

बंगला सन् १२९८ (सन् १८९१ ई०) श्रावण की त्रयोदशी के तीसरे पहर से उनको बहुत जोर से बुख़ार चढ़ा, रात्रि के दो बज कर १८ मिनट पर बंग जननी की गोद को सूना करके ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस संसार से पयान किया। सारे बंगाल में हाहाकार मच गया। हज़ारों दीन दुखिया अनाथ हो गये। साहित्य के तो चन्द्रमा ही अस्त हो गये। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बंगाल ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के वियोग में बड़ा दुख मनाया था।

छात्रहितकारी पुस्तकमाला की पुस्तकें

१—सफलता की कुंजी—स्वामी रामतीर्थ के अमेरिका में दिये हुये प्रसिद्ध व्याख्यान का सुन्दर अनुवाद। मू० ।)

२—ईश्वरीय बोध—स्वामी विवेकानन्द के गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के उपदेश-रत्नों का संग्रह। मू० ।॥)

३—मनुष्य-जीवन की उपयोगिता—तिब्बत में प्राप्त एक बहुत प्राचीन पुस्तक का सरस अनुवाद। इसके एक-एक शब्द उपदेश-प्रद हैं। मू० ॥=)

४—भारत के दशरत्न—भारत के दस महान् पुरुषों का संक्षिप्त परिचय। मू० ।-)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—अपने विषय की भारत भर में एक ही पुस्तक है। इसने लाखों युवकों को पतन के गड्ढे से निकाल कर उनका उद्धार किया है। मू० ।॥)

६—वीर राजपूत—वीर-रस-पूर्ण एक सुन्दर ऐतिहासिक उपन्यास। तिरंगे चित्र से सुशोभित पुस्तक का मू० १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें—स्वस्थ सुख-प्रद जीवन बिताने के लिये सुगम उपाय बताने वाली पुस्तक। मू० १)

८—महात्मा टाल्स्टाय की वैज्ञानिक कहानियाँ—मनोरंजक ढंग पर विज्ञान की शिक्षा देने वाली पुस्तक। मू० ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ—भारत के वीरों की साहस और वीरता से भरी हुई फड़कती हुई कहानियों का अनुपम संग्रह। मू० ॥=)

१०—आहुतियाँ—वीरों के बलिदान की अनुपम कहानियां जिनके एक-एक शब्द में जादू का सा असर है। मू० ।॥)

११—पढ़ो और हँसो—गुदगुदी पैदा करने वाली सात्विक और सुन्दर पुस्तक मू० ॥)

१२—जगमगाते हीरे—नवीन भारत के निर्माण-कर्त्ताओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। मू० १)

१३—मनुष्य-शरीर की श्रेष्ठता—इसमें शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का महत्व और उपयोगिता बताई गई हैं। मू० ।=)

१४—अनमोल रत्न—भारत के ऐतिहासिक महापुरुषों की संक्षिप्त जीवनियां दी गई हैं। मू० १।)

१५—एकान्तवास—यह सुरुचिपूर्ण और शिक्षाप्रद कहानियों का सुन्दर संग्रह है। मू० ।||)

१६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें—पृथ्वी के दुर्गम और दुस्तर स्थलों का पता लगाने वाले वीरों की फड़कती हुई कहानियां। मू० १)

१७—फल, उनके गुण तथा उपयोग—फलाहार पर सुन्दर और उपयोगी पुस्तक। मू० १)

१८—स्वास्थ्य और व्यायाम—इसमें बल बढ़ानेवाले उपयोगी व्यायामों का विवेचन किया गया है। इस विषय पर हिन्दी में यह पहिली ही पुस्तक है। कई चित्रों से युक्त पुस्तक का मू० १||)

१९—आरोग्य और आहार—इसमें भोज्य-पदार्थों की वैज्ञानिक विवेचना की गई है। यह भी अपने ढंग की एक ही पुस्तक है। है। मू० १)

२०—रति-रोग-रहस्य—इसमें दुराचार-जनित रोगों का विवरण तथा उनके दूर करने की सरल विधियां बताई गई हैं। मू० १।)

२१—मनचाही सन्तान—इसमें स्वस्थ और सुन्दर सन्तात पैदा करने के सुन्दर नियम बताये गये हैं। मू० १)

मैनेजर—छात्र-हितकारी पुस्तकमाला, दारागंज—प्रयाग